

---

## इकाई 17 चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म (समाधिपाद, सूत्र 30–40)

---

### इकाई की रूपरेखा

- 17.0 उद्देश्य
- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म
- 17.3 सारांश
- 17.4 शब्दावली
- 17.5 बोध / अभ्यास प्रश्न
- 17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

### 17.0 उद्देश्य

---

- विक्षेप और चित्त के परिकर्म अथवा अन्तराय से प्रकार जानेंगे।
- शारीरिक अन्तरायों के विषय में जानेंगे।
- मानसिक व्यवधानों के विषय में जानेंगे।
- पातञ्जल योगसूत्र के अनुसार चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म को जान सकेंगे।
- चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म के अर्थ एवं लक्षणों को समझ सकेंगे।
- चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म प्रयोजन एवं व्यावहारिक उपादेयता को समझ सकेंगे।

---

### 17.1 प्रस्तावना

---

इस इकाई में आप चित्त में उत्पन्न हुये विभिन्न, शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विक्षेपों के विषय में जानेंगे। इस इकाई में आप जानेंगे कि किस प्रकार शारीरिक मानसिक और भावनात्मक विक्षेप शरीर व मन को असन्तुलन की अवस्था में लाकर साधना बाधित करते हैं। सचराचर लोक में सुख एवं दुःख की अनुभूति प्रत्येक जीव को होती है। कर्माशय की तीव्रता के कारण किसी को तीव्र दुःखानुभूति होती है तो किसी को मन्द दुःख की अनुभूति होती है। इन दुःखों के कारणों की चर्चा करेंगे।

---

### 17.2 चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म

---

महर्षि पतंजलि ने योग मार्ग में आने वाली बाधाओं की मुख्य संख्या नौ बताई है जो इस प्रकार है—

‘व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि  
चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः’ ॥ 1/30 ॥

उपर्युक्त सूत्र में अन्तराय लक्ष्य है और चित्तविक्षेप यह लक्षण है। साक्षात् चित्त के जो विक्षेप करने वाले तत्त्व हैं उन्हीं को अन्तराय कहा जाता है। व्याधि आदि के अतिरिक्त विषय आदि भी परम्परया चित्त के विक्षेपक तत्त्व हैं। चित्त का विक्षेपक रजोगुण भी

होता है किन्तु चित्त में रहते हुये चित्त के विक्षेपक तत्त्व यह व्याधि आदि है। योग के प्रतिबन्धक तत्त्व जो कि अन्तराय कहे जाते हैं जो कि चित्त के मल कहे जाते है और ये दुखादि के जनक हैं। अर्थात् – व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व ये चित्त के विक्षेप हैं तथा समाधि की प्राप्ति में बाधारूप हैं। व्याधि-स्त्यान आदि ऐसी शारीरिक व मानसिक अवस्थाएँ हैं, जो कि चित्त में विक्षेप अर्थात् खलबली या हलचल पैदा कर देती हैं तथा ऐसी प्रत्येक चीज, जो कि चित्त में हलचल पैदा करती हो, समाधि अवस्था की प्राप्ति में बाधा बन जाती है। इसी कारण व्याधि-स्त्यान आदि को समाधि- अन्तराय या समाधि-विघ्न कहा गया है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है

1. व्याधि – शरीर व मन के स्वाभाविक क्रियाकलापों में पैदा हुआ किसी भी प्रकार का व्यवधान व्याधि कहलाता है। आयुर्वेद में इस व्यवधान का कारण वात, पित्त व कफ की विषमता बताया गया है।
2. स्त्यान- चित्त की अकर्मण्यता स्त्यान कहलाती है। स्त्यान के कारण चित्त योग के अनुष्ठान में अर्ह नहीं हो सकता है।
3. संशय – किसी विषय के सकारात्मक व नकारात्मक ध्रुवों को मानसिक विचारणा के माध्यम से साथ-साथ छूना संशय कहलाता है। यथा – मैं योगमार्ग पर चल सकूँगा या नहीं । योगमार्ग पर चलने पर भी मुझे समाधि अवस्था प्राप्त होगी या नहीं। यह संशय की अवस्था है। संशय का तात्पर्य यह भी है कि योग के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है अथवा नहीं।
4. प्रमाद – योग के साधनों का अनुष्ठान न करना प्रमाद कहलाता है। मानसिक लापरवाही। समाधि के साधन में प्रयत्न नहीं करना भी प्रमाद कहलाता है।
5. आलस्य – शरीर व चित्त का भारीपन आलस्य कहलाता है। कफ आदि के प्रयुक्त शरीर के गुरु होने से तमोगुण के प्रयुक्त चित्त गुरु होने से शरीर का अथवा चित्त का समाधि साधनों का अनुष्ठान है।
6. अविरति – चित्त में विषयभोगात्मक लालसा का पैदा हो जाना अर्थात् रूप-रस आदि ऐन्द्रिक विषयों को – भोगने की इच्छा का पैदा हो जाना अविरति कहलाता है। इसे हम अवैराग्य की अवस्था भी कह सकते हैं। चित्त की विषय प्राप्ति की अभिलाषा।
7. भ्रान्तिदर्शन – मिथ्याज्ञान को ही भ्रान्तिदर्शन कहते हैं । यथा- योग के साधनों के अनुष्ठान को व्यर्थ मानना । अथवा योग समाधि का साधन नहीं है इस प्रकार से विपरीत ज्ञान भी भ्रान्तिदर्शन है।
8. अलब्धभूमिकत्व – समाधि की अवस्था न बन पाना अलब्धभूमिकत्व कहलाता है। मधुमती, मधुप्रतीका, मधुविशोका और संस्कारशेष ये सब चारों चित्त के भूमि विशेष है। इन चारों अवस्थाओं में योग के अनुष्ठान करने से भी समाधि का लाभ नहीं प्राप्त होता है।
9. अनवस्थितत्व – प्राप्त कर ली गयी समाधि की अवस्था का स्थिर न हो पाना अनवस्थितत्व कहलाता है। किसी एक मधुमती, दो अथवा तीन के लाभ होने पर परिपूर्ण स्वीकार कर लेना ही चित्त की अनवस्थितत्व है।

चित्त के विक्षेपक व्याधि आदि अन्तराय से अतिरिक्त भी विक्षेप के साथ-साथ रहने वाले तत्त्व विद्यमान हैं। जो इस प्रकार है –

अर्थात् — दुःख, हताशा, शरीराङ्गों में सूक्ष्म कंपन, असहज श्वास-प्रश्वास विक्षेप सहभागी हैं अर्थात् ये सब पूर्वोक्त चित्तविक्षेपों के साथ-साथ पैदा हो जाते हैं। विक्षेपों के साथ होने वाले विक्षेप सहभूव हैं इसको विक्षेपानुचर कहे जाते हैं। इनमें से प्रथम दुःख है। यह दुःख तीन प्रकार का है — आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख शारीरिक और मानसिक दो है। शरीर की संरचना वात, पित्त और कफ की अवस्थाविशेष होने पर होती है, यदि जब वात, पित्त और कफ इन तीनों में से किसी एक के भी कम अथवा अधिकता हो जाये तब शरीर की स्वस्थता समाप्त होने की सम्भावना अत्यधिक होने लगोगी। अतः वात, पित्त और कफ के विषमता से होने वाले दुःख को शारीरिक दुःख कहते हैं। वस्तुतः शरीर के निमित्त समुत्पन्न दुःख का नाम शारीरिक दुःख है। मानसिक दुःख काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद आदि विषय के दर्शन के द्वारा होते हैं। मानसिक दुःख का उदाहरण है कि जब न चाहने वाले व्यक्ति यात्रा के समय सम्मुख विराजमान हो जाये, वह व्यक्ति किसी भी प्रकार से वाणी आदि के द्वारा उसको कष्ट नहीं पहुंचाता है किन्तु फिर भी उसको देखकर होने वाला कष्ट मानसिक दुःख है। मानसिक दुःख प्रियवियोग और अप्रियसंयोग से समुत्पन्न होता है। यह दोनों प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख आन्तरिक उपाय से साध्य होने से आध्यात्मिक दुःख हैं।

बाह्य उपाय से समुत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक और आधिदैविक के भेद से दो प्रकार का है। आधिभौतिक दुःख के अन्तर्गत मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप और स्थावर के द्वारा समुत्पन्न होता है। आधिदैविक दुःख यक्ष, राक्षस और विनायक आदि देवों से समुत्पन्न होने वाला दुःख भी आधिदैविक दुःख के नाम से व्यवहृत होता है। इस प्रकार से तीनों दुःखों के द्वारा अन्तःकरण में विद्यमान चेतना शक्ति के प्रतिकूलतया वेदनीय होने से उससे होने वाला अभिघात ही दुःख है।

जब पूर्वसूत्र में कहे गये व्याधि-स्त्यान आदि समाधि के विघ्न होते हैं, तो अधिकांशतया उनके साथ-साथ एक प्रकार का मानसिक दुःख- हताशा — शरीर के अङ्गों में सूक्ष्म कंपकपी तथा लयहीन श्वास-प्रश्वास भी पैदा हो जाते हैं। ये भी व्याधि-स्त्यान आदि की भ्रंति समाधि अवस्था की प्राप्ति में बाधक हैं क्योंकि ये भी चित्त में एक प्रकार का क्षोभ या हलचल पैदा कर देते हैं और यह पूर्वसूत्रों में बताया जा चुका है कि प्रत्येक वह चीज समाधि अवस्था के आविर्भाव में बाधक बन जाती है जो कि चित्त में विक्षोभ पैदा करती हो। दौर्मनस्य अर्थात् अभिलाष विघात होने से चित्त का क्षोभ होना। अङ्गों में कम्पन होना ही अङ्गमेजयत्व कहलाता है। श्वास अनिच्छा होने पर भी उसके प्रयत्न से रहित होकर स्वयमेव प्राणी बाह्यवायु का अतिशय रूप से आचमन करता है, पीता है और शरीर के अन्दर प्रवेश करता है उसको श्वास कहते हैं। अनिच्छा होने पर भी प्रयत्न से रहित स्वयं प्राण को कौष्ठ्य में निरूसार और बाह्य करने को प्रश्वास नामक विकार कहा जाता है। श्वास रेचक प्राणायाम का विरोधी होता है। प्रश्वास समाधि के अङ्गभूत पूरक प्राणायाम का विरोधी है। दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजय ये तीनों चित्त के स्थिरता का विरोधी है।

### वृत्तियों को शांत करने का उपाय

यहाँ तक सूत्रकार ने मन को वृत्तिरहित शान्त करने के लिये दो प्रक्रियाओं का निर्देश किया है। एक प्रक्रिया का नाम है ज्ञानमार्ग — जो अभ्यास और वैराग्य से सम्बद्ध है, जिसकी चर्चा सांख्यशास्त्र में भी विस्तार से की गई है। दूसरी प्रक्रिया है भक्तिमार्ग —

जो कि ईश्वर प्राणिधानाद्वा 1/23 से लेकर 31वें सूत्र पर समाप्त होती है तथा साधन पाद के भी प्रथम व पैंतालीसवें सूत्र में जिसका वर्णन मिलता है। पूर्वसूत्रों में ईश्वर प्राणिधान ( ईश्वर की भक्तिविशेष) के द्वारा व्याधि इत्यादि समस्त अन्तरायों का अभाव हो जाता है ऐसा बताया गया । प्रश्न उठता है कि ज्ञानमार्ग का साधक इन समाधि के प्रतिपक्षभूत व्याधि इत्यादि अन्तरायों का निवारण किस उपाय से करें ? इस प्रश्न का उत्तर अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः 1 / 12 सूत्र के द्वारा कहा गया है। उस पूर्वसूत्र में वर्णित समाधि के प्रतिपक्ष व्याधि इत्यादि अन्तरायों के निवारण के लिये उपाय रूप में अभ्यास के विषय का उपसंहार करते हुये सूत्रकार कहते हैं

**विक्षेपों और उपविक्षेपों के निवारणार्थ एकतत्त्व का अभ्यास –  
तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ 1/32 ॥**

उन व्याधि-स्त्यान आदि विक्षेपों तथा दुःख आदि विक्षेपों के निराकरण के लिये एकतत्त्व का अभ्यास करना चाहिये । उन विक्षेपों के प्रतिषेध करने के लिये एक तत्त्व परमेश्वर में प्राणिधान स्थापित करने से होता है। चित्त जब एकाग्र होता है तब चिरकाल तक उसी परमेश्वर के अभ्यास में निरत रहता है।

**ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ 1/29 ॥**

सूत्र में जप की प्रक्रिया के द्वारा व्याधि, स्त्यान आदि विक्षेप नष्ट हो जाते हैं तथा यह भी पूर्वसूत्र में स्पष्ट किया जा चुका है कि जब साधक व्याधि, स्त्यान आदि विक्षेपों से पीड़ित होता है, तो प्रायः दुःख, दौर्मनस्य आदि उपविक्षेप भी पैदा हो जाते हैं अर्थात् दुःख आदि उपविक्षेप सभी को प्राप्त हो ऐसा अवश्य नहीं है । चूँकि दुःख आदि उपविक्षेप, व्याधि आदि विक्षेपों के अनुगामी हैं इसलिये जप की प्रक्रिया के द्वारा तो वे भी नष्ट हो ही जायेंगे। जप की प्रक्रिया के द्वारा उनके नष्ट होने में किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं है। जप के द्वारा और उस स्वरूप की भावना करने से जो अन्तराय व्याधि आदि हैं, वे साक्षात् अथवा परम्परया चित्त में विद्यमान चित्त के विक्षेपक योग विरोधी रज और तमो वेग के प्रवर्तक के अभाव रूपी कारणभूत चित्त में विलय होती है। चित्त विक्षेपों के लय होने पर चित्त स्थिर और एकाग्र होकर स्थिति पद को प्राप्त करते हैं। परमेश्वर स्वप्राणिधान से प्रसन्न होकर झटिति प्रत्यक्चेतन की अधिगम होती है, इसलिये स्वात्मस्वरूप के दर्शन सह कृत परमेश्वर स्वरूप का भी दर्शन होता है जिससे मुक्ति की अभिमुखता प्राप्त होती है।

अन्य विधि के द्वारा भी व्याधि-स्त्यान आदि विक्षेपों तथा दुःख, दौर्मनस्य आदि सहविक्षेपों से छुटकारा पाया जा सकता है, किसी भी एक विधि के माध्यम से चित्त को एक विषय वाला बनाने से इनसे मुक्ति पायी जा सकती है । योगदर्शन में अनेक स्थानों पर मन को एकाग्र करने की अनेक विधियाँ बतायी गयी हैं। उनमें से अपने अनुकूल किसी एक विधि का चयन करके अभ्यास किया जा सकता है। जैसे –

**मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्  
॥ 1/33 ॥**

सुखी व्यक्तियों के प्रति मैत्री भाव, दुःखी व्यक्तियों के प्रति करुणा भाव, पुण्यात्मा व्यक्तियों के प्रति प्रसन्नता का भाव तथा पापी व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा भाव रखने से साधक का चित्त शान्त व निर्मल हो जाता है।

अर्थात् – व्यक्ति के अन्तःकरण की तरफ थोड़ा सूक्ष्मता से देखने पर हम पायेंगे कि वह सुखी व्यक्तियों के प्रति ईर्ष्या भाव, दुःखियों के प्रति घृणा भाव, पुण्यात्मा व्यक्तियों के प्रति आलोचना भाव अर्थात् अप्रसन्नता का भाव तथा पापी व्यक्तियों के प्रति निन्दात्मक उत्सुकता या लगावात्मक उत्सुकता रखता है। ईर्ष्या आदि के ये असात्विक भाव उसके मन को सतत तरङ्गायमान रखते हैं और धीरे-धीरे आध्यात्मिकता की दृष्टि से विक्षिप्त-कोटि वाला बना देते हैं, फिर उसे आधा घण्टा चुप होकर बैठने के लिए कहो, तो आधा घण्टा भी चुप होकर बैठना उसके लिए असंभव हो जाता है। महर्षि पतञ्जलि कह रहे हैं कि जो व्यक्ति इस विक्षिप्तावस्था से निकलना चाहता है तथा जो साधना करना चाहता है अर्थात् ध्यान की गहराईयों में उतरकर चेतन आत्मा रूप स्वयं को तथा परमचेतन रूप परमात्मा को जानना चाहता है, उसे सुखी व्यक्तियों के प्रति मैत्री भाव, दुःखी व्यक्तियों के प्रति करुणा-भाव, पुण्यात्मा व्यक्तियों के प्रति प्रसन्नता का भाव तथा पापी व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा – भाव अर्थात् तटस्थ भाव रूप बीज को अपने अन्तःकरण में आरोपित करके, उसे सतत विकसित करना चाहिये। ऐसा करने से ही उसका चित्त शान्त व निर्मल होगा।

महर्षि पतञ्जलि अगले सूत्र में मन को शान्त व निर्मल बनाने की एक और विधि बता रहे हैं – इन्द्रियों के विषयों को भी विषय बनाकर मन को शान्त व निर्मल बनाया जा सकता है। जैसे –

### विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ॥ 1/35 ॥

रूप-रस आदि इन्द्रिय-विषयों को विषय बनाकर उत्पन्न हुई प्रकृष्ट वृत्ति भी, जो कि मन की स्थिरता को बनाये रखने वाली होती हो, चित्त को शान्त व निर्मल बना देती है।

अर्थात् – मन को स्थिरता प्रदान करने वाली एक अन्य विधि इस सूत्र में बताई गयी है। यह विधि अनुपम है। इस विधि में इन्द्रियों के विषयों को ही इन्द्रियविषयात्मक विचारसरणी से मुक्ति का साधन बना लिया जाता है या यूँ कहिये कि काँटे को निकालने के लिए, काँटे को ही साधन बना लिया जाता है, परन्तु ध्यान रखें कि काँटा निकल जाने के बाद दोनों काँटों को फेंक दिया जाता है। अब विधि के सम्बन्ध में विचार करते हैं। हमारी इन्द्रियों के पाँच विषय हैं – शब्द, रूप, रस, गन्ध व स्पर्श। इन पाँचों विषयों में से किसी भी एक को लेकर हम इस विधि का अभ्यास कर सकते हैं। अभ्यास करने के लिए आपको सर्वप्रथम उपयुक्त विषय का चयन करना होगा। उपयुक्त विषय की कसौटी यही है कि वह मनोवृत्ति को बाँधने वाला हो अर्थात् वह ऐसा हो कि जिसमें हम बह सकें, स्वयं को भूल सकें। जैसे –

1. शब्द – विषय को माध्यम बनाकर अभ्यास – शब्दात्मक विषय में शान्त प्रकृति की अव्यक्त ध्वनियाँ यथा- किसी नदी के बहते पानी की ध्वनि, किसी झरने के गिरते पानी की ध्वनि या हवा के चलने से पैदा हुई ध्वनि, किसी बगीचे में होता पक्षियों का मधुर कलरव आदि इस ध्यान के लिए सर्वोपयुक्त शब्द विषय हैं, प्रकृति में नैसर्गिक रूप से पैदा हुई ध्वनियाँ ही मेरी दृष्टि से सर्वोपयुक्त हैं, जबकि पों-पों, फट्-फट् आदि की ध्वनियाँ तथा देशी-विदेशी किसी भी प्रकार के संगीत से पैदा हुई ध्वनियाँ इस विधि में अभ्यास के लिए उपयुक्त नहीं हैं। क्योंकि वे हमारे मन को विचार करने के लिए प्रेरित नहीं करती।
2. रूप विषय को माध्यम बनाकर अभ्यास – रूपात्मक विषय में कोई भी सुन्दर वृक्ष या मनोहारी पौधा या उस पर खिला हुआ कोई चित्ताकर्षक फूल, बहती नदी,

अन्तहीन नीला आकाश या क्षितिज आदि मेरी दृष्टि में सर्वोपयुक्त विषय हैं क्योंकि ये विचारों को उत्तेजित नहीं करते। जबकि किसी भी स्त्री-पुरुष का चित्र, चाहे वह रानी लक्ष्मीबाई या भगतसिंह का ही क्यों न हो, इस ध्यान – विधि के लिए उपयुक्त नहीं माने जायेंगे क्योंकि ये सब हमारे मन को विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

3. रस विषय— को माध्यम बनाकर अभ्यास – रसात्मक विषय में पके केले के टुकड़े, गुड़ छोटी-छोटी डलियाँ, मिश्री या किसी मनपसन्द मिठाई के छोटे-छोटे टुकड़े आदि अभ्यास हेतु सर्वोपयुक्त हैं। नमकीन या अन्य कोई चटपटी चीज तथा ऐसी चीजें जो चबाकर खानी पड़ें अभ्यास हेतु बिल्कुल भी उचित नहीं हैं।
4. गन्ध – विषय को माध्यम बनाकर अभ्यास – गन्धात्मक विषय में किसी सुगन्धित पुष्प की सुगन्ध, अग्नि में घृत डालने से पैदा होने वाली सुगन्ध, अग्नि में घृत+गुग्गुलु जलाने से पैदा होने वाली सुगन्ध आदि अभ्यास हेतु सर्वोपयुक्त हैं। मन को खिन्न करने वाली किसी भी प्रकार की गन्ध, केवल कण्डों या लकड़ियों के जलने से पैदा होने वाली गन्ध, किसी भी देशी-विदेशी इत्र की गन्ध आदि अभ्यास हेतु बिल्कुल भी उचित नहीं हैं।
5. स्पर्श – विषय को माध्यम बनाकर अभ्यास – स्पर्शात्मक विषय में कोई मुलायम बिस्तर, मुलायम आराम कुर्सी, मुलायम घास आदि अभ्यास हेतु सर्वोपयुक्त हैं। शरीर को उद्वेलित करने वाला कोई भी कठोर या खुरदुरा स्पर्श अभ्यास हेतु उचित नहीं हैं।

महर्षि पतंजलि मन को शान्त व निर्मल बनाने की अन्य विधि बता रहे हैं

—  
विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ 1 / 36 ॥

शोक से रहित प्रकाश से युक्त प्रवृत्ति भी चित्त को शान्त व निर्मल बना देती है। अर्थात् —कल्पनाशील स्वभाव के व्यक्तियों के लिए, चित्त को रूपान्तरित करने की यह एक अच्छी प्रक्रिया है। अन्य उपाय भी बताते हुए कहा है कि — रागरहित योगियों के चित्त का आलम्बन करने वाला साधक का चित्त भी स्थिरता प्राप्त कर लेता है। विशोका अर्थात् शोक समाप्त हो गया है जिसमें, इसका तात्पर्य यह होता है जिसमें रज और तम मल जिसमें समाप्त हो गई हो तथाविध प्रवृत्ति को विशोका कहते हैं। यह विशोका दो प्रकार से है बुद्धिसम्बित और अस्मितासम्बित। बुद्धिसम्बित अर्थात् बुद्धि का साक्षात्कार। अस्मितासम्बित अर्थात् 'मैं हूँ' इत्याकारक स्वात्मस्वरूप मात्र का साक्षात्कार। बुद्धिसाक्षात्कार का क्रम है कि जैसे उदरसोमेध्य प्रदेश में पुण्डरीक नामक एक पद्म अधोमुख अष्ट दल वाले संस्थित हैं, उस पद्म रेचकनाम के द्वारा प्राणायाम से उर्ध्व मुख करना चाहिये, सभी उर्ध्व प्रदेशों के प्रान्तभाग में बुद्धि का स्थान विद्यमान है। आत्मा का स्वस्वरूप अहमित्याकारक साक्षात्कार होता है जैसे आत्मा के निवास परब्रह्म के स्थान से ऊपर बुद्धि के स्थान से नीचे स्थान में निवास करके आत्म धारणा को देखते हुये योगी के चित्त को स्थिर स्थिति पद को प्राप्त करता है। इसलिये बुद्धि अहंकार से विमुख होकर आत्ममात्र सम्मुख होते हैं, आत्मा परमात्मा के संसर्ग होने से आत्मा के प्रकाशित होने से परमात्मा प्रकाशित होता है। यह उभयविध प्रकार के समापत्ति संसिद्धि ज्योतिष्मती ऐसा ख्यापित होता है।

वीतरागविषयम् वा चित्तम् ॥ 1 / 37 ॥

अर्थात् प्रारम्भिक स्तर के योगाभ्यासियों व मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को जानने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए यह सूत्र बहुत कीमती है क्योंकि इस सूत्र में हमें मन के स्वभाव को परिवर्तित करने का एक अचूक उपाय बताया गया है। योगाभ्यासी का लक्ष्य होता है – चित्त को रागरहित बना लेना। महर्षि पतञ्जलि ने यह बात उसी दृष्टिकोण से कही है, लेकिन यह अन्यत्र भी इतनी ही सशक्तता से प्रभावकारी होगी। हमारे आन्तरिक क्रिया – तन्त्र का यह स्वभाव है कि हम अपने मन को जिस प्रकार के भावों से आप्लावित करते हैं, हमारे अन्दर तदनुरूप परिवर्तन घटित होने लगते हैं। चित्त का लगाव-अलगाव के भावों से मुक्त अन्तःकरण की अवस्था को ही वीतरागता कहा जाता है।

महर्षि अगले सूत्र में मन को शान्त व निर्मल बनाने की एक और विधि बता रहे हैं—

### स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ 1/38 ॥

स्वप्न का आलम्बन एवं निद्रा में बोध का आलम्बन भी चित्त को शान्त व निर्मल बना देता है।

अर्थात् – स्वप्न का आलम्बन व निद्रा में स्वयं के साक्षित्व-बोध का आलम्बन, ये दोनों ही मन की शान्ति व निर्मलता की प्राप्ति के अचूक उपाय हैं। वस्तुतः कुछ आध्यात्मिक अनुभव इस प्रकार के हैं कि जिनका क्षणिक स्पर्श भी व्यक्ति के अन्तःकरण में क्रान्तिकारी रूपान्तरण घटित कर देता है। शायद यह कहना सत्य के अधिक निकट होगा कि उन आध्यात्मिक अनुभवों का क्षणिक स्पर्श ही व्यक्ति को आधा योगी बना देता है। ये आध्यात्मिक अनुभव आकस्मिक रूप से स्वतः भी घटित हो सकते हैं, साधना की ध्यान विधियों के माध्यम से योजनाबद्ध तरीके से भी घटित किये जा सकते हैं व गुरु के द्वारा अपनी आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से भी शिष्य में घटित किये जा सकते हैं। गुरु के द्वारा घटित किये गये, इस प्रकार के आध्यात्मिक अनुभवों को ही आध्यात्मिक जगत् में गुरु प्रसाद या गुरु कृपा कहा जाता है। महर्षि पतञ्जलि यह दो विधियों की चर्चा करते हैं—पहली विधि में – स्वप्न के आलम्बन के माध्यम से चित्त को शान्त व निर्मल बनाना। दूसरी विधि में –निद्रा में स्वबोध के आलम्बन के माध्यम से चित्त को शान्त व निर्मल बनाना। अगले सूत्र में मन को शान्त व निर्मल बनाने की अवशिष्ट सभी विधियों के लिए कसौटी प्रदान करते हुए उपसंहाररूप में कह रहे हैं

### यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ 1/39 ॥

अन्य किसी अभिमान्य सिद्धान्त के अनुसार किसी अन्य विधि से ध्यान करने से भी चित्त शान्त व निर्मल हो जाता है।

अर्थात् – चित्त को शान्त व निर्मल बनाने की अनेकों ध्यान-विधियाँ हैं। सभी का वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है और न ही प्रासंगिक है इसलिये महर्षि ने अवशिष्ट विधियों के लिए उपसंहाररूप में कसौटी देते हुए प्रकरण को समाप्त कर दिया है। सूत्र में आया “अभिमत शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है अभिमान्य सिद्धान्त। अभिप्राय यह है कि साधकों को स्वयं के चित्त को शान्त व निर्मल करने के लिए अभिमान्य सिद्धान्त सम्मत ध्यान पद्धतियों से ही अभ्यास करना चाहिये। ऐसे ही किसी भी तरीके से नहीं करने लग जाना चाहिये क्योंकि ध्यान एक ऐसी क्रिया है कि यदि आप इसे ठीक विधि से करते हैं। तो यह आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने चरम स्तर तक विकसित कर सकती है कि उस दशा में आपको मनुष्य न कहकर महापुरुष, ज्ञानी, योगी, बुद्धपुरुष या दिव्य पुरुष आदि कहा जाय तो अधिक उचित होगा। इसके दूसरी

और यदि आप ध्यान की क्रिया को गलत विधि से करते हैं, तो यह आपको अत्यधिक अशान्त, कामी, क्रोधी, चिड़चिड़ा व विक्षिप्त सा बना देगी। मैं ऐसे बहुत सारे व्यक्तियों को जानता हूँ, जिन्होंने गलत विधि से ध्यान करके स्वयं के मन व व्यक्तित्व को उलझ पुलझ व विक्षिप्त सा बना लिया है व कुछ तो बिल्कुल ही पागल हो गये हैं। इन सब कारणों से मेरा सभी साधकों से निवेदन है कि ध्यानाभ्यासी से ध्यान की विधि को सीखकर तथा उसके निर्देशन में ही ध्यान का अभ्यास करें और यदि यह सम्भव न हो तो किसी अभिमान्य सिद्धान्त सम्मत ध्यान पद्धति से ही ध्यान करें। मैं यहाँ एक आसान ध्यान पद्धति दे रहा हूँ, जो कि सर्वथा अनुभूत है। साधना में उत्सुकता रखने वाले साधक इसका निर्भय होकर अभ्यास कर सकते हैं।

विधि इस प्रकार है— किसी शान्त स्थान पर यथारुचि शरीर स्थिति में बैठ जायें। कमर को सीधी आदि रखने का कोई पूर्वाग्रह न रखें। यदि आप जमीन पर बैठने के अभ्यासी नहीं हैं, तो कुर्सी पर पैरों को नीचे लटकायी हुई अवस्था में भी बैठ सकते हैं। इसके बाद अपने सामने एक बड़ा-सा शीशा रख लीजिये। शीशा इतना बड़ा हो कि यदि आप नीचे बैठे हैं, तो आप स्वयं के पूरे शरीर को शीशे में स्पष्ट रूप से देख सकें। यदि आप कुर्सी पर बैठे हुए हैं, तो सामने मेज रखकर उस पर शीशा रखें। इसके बाद स्वयं को एकाग्र करते हुए शीशे में पड़ रहे स्वयं के सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब को ध्यान से देखें, बिना किसी विचार के केवल देखें। उसके बाद धीरे-धीरे स्वयं के चेहरे पर केन्द्रित हो जायें। उसी को देखने मात्र में पूरी तरह से तन्मय हो जायें। बीच में जब पलक झपकने की इच्छा हो, तो पलकों को झपक लें। इस प्रकार निर्विचार होकर तन्मयता से स्वयं को देखते रहने से कुछ ही देर बाद आप पायेंगे कि मन में चलता विचारों का प्रवाह मन्द पड़ता जा रहा है। ध्यान रखने की बात है कि विचारों के प्रवाह को मन्द या समाप्त करने के लिए सीधा विचारों के साथ कुछ भी नहीं करना है, यहाँ तक कि उनकी ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देना है। विचारों व विचारों के प्रवाह के प्रति बिल्कुल ही उदासीन रहना है। अपनी सम्पूर्ण एकाग्रता को पूरी तरह से स्वयं को देखने की क्रिया के प्रति उड़ेल देना है। इस प्रकार कुछ दिन तक सतत अभ्यास करते हुए एक दिन आप अचानक पायेंगे कि आपका मन मस्तिष्क विचारों से पूरी तरह से खाली है। विचारों की अराजक भीड़ के स्थान पर अब वहाँ एक प्रकार की तृप्तिदायक शान्ति छायी हुई है। जब मन-मस्तिष्क में इस प्रकार की शान्ति छाने लगे, तब स्वयं के प्रतिबिम्ब के प्रति उदासीन होकर स्वयं को इस शान्ति में डूब जाने दें। अधिक से अधिक देर तक इसी निर्विचार शान्ति में बने रहने का प्रयास करें। निर्विचारता से आविर्भूत हुई यह चित्त — शान्ति ही आपके अन्तःकरण को शान्त व निर्मल बनाती हुई, आपके व्यक्तित्व को चरम — स्तर तक रूपान्तरित करेगी।

ध्यान की एक अन्य महत्वपूर्ण विधि का संकेत किया जा रहा है जिसका विशेषरूप से व्यवहारकाल में उपयोग लिया जा सकता है — इस ध्यानविधि को हम तटस्थ अवलोकन इस नाम से पहचान सकते हैं। चित्त में जैसे-जैसे ज्ञानात्मक वृत्तियाँ उदय होती हों उनको उसी समय बिना किसी अच्छा या बुरा नाम दिये अवलोकन करते रहें। प्रायः जब वृत्तियाँ उदय होती हैं तब या तो उनके साथ व्यक्ति का तादात्म्य हो जाता है अर्थात् वही हो जाता है — यह चित्त की जागते समय भी परम बेहोशी की अवस्था है। जैसे क्रोध आने पर वही हो जाता है, क्रोध आने पर भी व्यक्ति को यह बोध नहीं रहता कि उसे क्रोध आ रहा है। इसी को हमने कहा बेहोशी कि क्रोध से गुजरते हुए भी क्रोध का भान न रहना। वृत्तियों के उदयकाल में व्यक्ति यदि थोड़ा सजग रहता है, पूरा बेहोश नहीं होता तो दूसरा काम वह यह करता है कि उसे अच्छा या बुरा मानता हुआ उसके समर्थन या असमर्थन में हेतु देने लगता है। किसी भी

चित्तवृत्ति या भाव के उदय होने पर उसके समर्थन या असमर्थन में हेतु न देकर और उसके साथ तादात्म्य भी न करके यदि जो है उसका शान्त अवलोकन किया जाये तो ऐसा करते हुए चित्त में यह एक ध्यान की अद्भुत स्थिति पैदा हो जाती है। एकान्त में ध्यान करते समय भी इस विधि का उपयोग किया जा सकता है तथा व्यवहार काल में काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या आदि किसी भी भाव के उदय होने पर भी इसी प्रक्रिया का उपयोग लेकर अपने को ध्यान में रखा जा सकता है।

### परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ 1/40 ॥

पूर्वोक्त विधियों के माध्यम से स्थिर किये हुए चित्त का परमाणु से लेकर परम महत् पर्यन्त वशीकरण सम्भव हो जाता है ।

अर्थात् – पूर्वोक्त ध्यानाभ्यासों के द्वारा चित्त इतना सक्षम व सामर्थ्यशाली हो जाता है कि साधक उसे परम सूक्ष्म परमाणु से लेकर परम महत् किसी भी सत्तावान् वस्तु पर अभिकेन्द्रित कर सकता है। उपर्युक्त सूत्रों में ध्यान-विधियों की प्रक्रिया को लिखते हुए, ऐसा मैंने सभी जगह स्पष्ट किया है कि एक स्थिति ऐसी आती है कि मस्तिष्क की समस्त अस्त-व्यस्तता, विचारों की समस्त अराजकता खो जाती है और हम स्वयं को एक प्रकार की विक्षिप्तता से मुक्त हुआ-सा महसूस करते हैं। उस समय हम स्वयं को मन-मस्तिष्क व समस्त ज्ञानेन्द्रियों का नियन्ता महसूस करते हैं। इस सूत्र में इस अवस्था तक पहुँच चुके चित्त की सामर्थ्य बतायी गयी है कि उस समय चित्त इतना सामर्थ्यवान् होता है कि सबसे सूक्ष्म पदार्थ से लेकर सबसे स्थूल पदार्थ तक किसी भी पदार्थ में उसे एकाग्र किया जा सकता है तथा तत्सम्बन्धी ज्ञानविशेष को जाना जा सकता है। वस्तुतः यही वह बिन्दु है, जहाँ से यदि साधक पदार्थ को जानने की बाह्य यात्रा पर निकल पड़ता है, तो कालान्तर में उसे हम वैज्ञानिक के रूप में जानते हैं और यदि स्वयं को जानने की इच्छा से अन्तर्यात्रा पर निकल पड़ता है, तो कालान्तर में उसे हम योगी, आत्मज्ञानी आदि के रूप में जानते हैं।

### 17.3 सारांश

चित्तविक्षेप एवं चित्त के परिकर्म के अर्थ, लक्षण एवं चित्त के प्रयोजन और व्यावहारिक उपादेयता को समझा। चित्त में उत्पन्न हुये विभिन्न, शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विक्षेपों कैसे शरीर व मन को असन्तुलन की अवस्था में लाकर साधना बाधित करते हैं। चराचर लोक में सुख एवं दुःख की अनुभूति प्रत्येक जीव को होती है। कर्माशय की तीव्रता के कारण किसी को तीव्र दुःखानुभूति होती है तो किसी को मन्द दुःख की अनुभूति होती है। विक्षेप व सहविक्षेप केवल साधारण जनों को भ्रमित नहीं करते बल्कि योगीजनों के जीवन में भी इनका प्रभाव रहता है। अन्तर इतना है कि योगी समझ रखते हुये उन्हें साक्षी भाव से आने और जाने देता है कष्टों को पकड़ के नहीं रखता और न ही कारणों का निर्माण करता है। यदि हमको संसार में सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत करना है तो सदैव उन मनोविकारों को नियन्त्रण में रखना है जो हमारे मानसिक सन्तुलन को नष्ट करते हैं, हमें एकांगी बनाते हैं और हमें पतन की ओर ले जाते हैं। सुख और दुःख संसार में अवश्यम्भावी हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मक है; वृत्तियाँ संसार चक्र में डालेंगी ही। अतः समझ को बनाये रखना ही एकमात्र उपाय है। एवं चित्तशुद्धि के उपायों का सहारा लेकर आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर मार्ग है।

ऋषि पतंजलि मर्मज्ञ हैं इसी कारण वे चित्त के गहन तलों तक पहुँच कर वहाँ तक

जाने का रास्ता सुझा रहे हैं। महर्षि ने जिस सटीकता और सरलता से चित्त को समझकर उसके नियन्त्रण के उपाय बताये हैं वह दूसरा उदाहरण ढूँढना दुष्कर है। आपने अभी तक पढ़ा और जाना कि चित्त शुद्धि साधक के अभ्यास और सतत् प्रयास का ही सुफल है। इसके लिये धैर्य और निरन्तरता अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कि महर्षि कहते हैं 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥' 1/12 और स तु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः॥ 1/14 इन सूत्रों में तो स्पष्ट ही है कि बहुत काल तक निरन्तर और आदरपूर्वक अभ्यास ही वास्तविक स्थिति तक ले जाने का रास्ता है।

#### 17.4 शब्दावली

1. व्याधि	बीमारी
2. आलस्य	शरीर का भारीपन
3. भ्रांति	मिथ्या ज्ञान
4. प्रमाद	योग साधनों का अनुष्ठान न करना
5. दौर्मनस्य	हताश
6. सहभुव	सहभागी
7. तत्	उन
8. मैत्री	मित्रता
9. मुदित	प्रसन्नता
10. विषयवती	रूप-रस आदि विषय वाली
11. मनस	मन की
12. विशोका	शोक से रहित

#### 17.5 बोध/अभ्यास प्रश्न

1. विक्षेप क्या है ?
2. सह विक्षेप क्या है ?
3. अंतर क्या है? स्पष्ट करें ।
4. विक्षेप और सहविक्षेप के निराकरण का उपाय क्या है ?
5. चित्तप्रसादन क्या है ?
6. रागरहित योगियों के चित्त का अवलंबन करने से क्या होता है।

#### 15.6 सन्दर्भग्रन्थ सूची

पातंजल योगसूत्र, व्याख्याकार, श्रीनन्दलाल दशोरा, हरिद्वार रणधीर प्रकाशन १९६७ ।

योगदर्शन, प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या (व्याख्याकार, स्वामी श्री अङ्गदानन्द जी, मुम्बई, श्री परमहंस स्वामी अङ्गदानन्दजी आश्रम ट्रस्ट ।

योगदर्शन, व्याख्याकार, पं. राजाराम प्रोफेसर लाहौर साहित्य प्रचारक मण्डल, १९२२ ।

पातञ्जलयोगदर्शनम्, व्याख्याकार डॉ सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।

पातञ्जल योगदर्शनम् व्याख्याकार श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी विज्ञानाश्रम अजमेर, दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस १९३२ ।

योगतत्त्वांक, कल्याण विशेषांक, गीताप्रेस गोरखपुर, वर्ष १९६६ ।

पातञ्जल योगसूत्र, बंगाली बाबा व्याख्या, हिन्दी अनुवादक कुमारी वृजरानी देवी, पूना एन. आर. भार्गव, १९४८ ।

योगदर्शन समीक्षा लेखक पं श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, वाराणसी, कृष्णदास अकादमी, १९६७

भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व लेखक – एम.हिरियन्ना, अनु प्रकाश नारायण शर्मा, सेन्ट्रल बुक डिपो, १९५४

भारतीय दर्शन की रुपरेखा, लेखक प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, १९७४

भारतीय दर्शन, लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी, चौखम्बा ओरियन्टलिया १९७६।

भारतीय दर्शन, लेखक – वाचस्पति गौरोला, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन २००६।

भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, लेखक – चन्द्रधर शर्मा दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास, २०१०।

वेदान्तसार, (बदरीनाथ शुक्ल विरचित हिन्दी व्याख्या एवं रामतीर्थयति विरचित विद्वन्मनोरञ्जनी टीका सहित) सदानन्द. सम्प. बदरीनाथ शुक्ल. वाराणसी मोतीलाल बनारसीदास, १९७६.

सर्वसिद्धान्तसंग्रह, शकराचार्य. सम्प. सूर्यनारायण शुक्ल. वाराणसी काशी विश्वनाथ प्रेस, सर्वदर्शनसंग्रह, (अभ्यकरवासुदेव शास्त्रि द्वारा दर्शनाञ्कुर व्याख्या सहित) सम्प. वासुदेव शास्त्री अभ्यकर. प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर, (निर्णयसागर) १९२४.

सांख्यतत्त्वकौमुदी,(गजाननशास्त्री मुसलगांवकर विरचित हिन्दी व्याख्या सहित) वाचस्पति मिश्र. वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, १९६२.

पातञ्जल योगप्रदीप, स्वामी ओमानन्द तीर्थ, गीता प्रेस गोरखपुर गीता प्रेस, गोरखपुर

पातञ्जल योगदर्शनम्, आचार्य उदयवीर शास्त्री (आर्य साहित्य भवन)

मुक्ति के चार सोपन, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुगेर, बिहार)